हरियाणा की साँग परम्परा के अनुपम रत्न - पं. लख्मी चन्द

डा. मधु शर्मा
सहायक प्रोफसेर, संगीत
सनातन धर्म कॉलेज, अम्बाला छावनी

सारांशः–

''हरियाणा की साँग परम्परा के अनुपम रत्न– पं. लखमीचंद'' साँग हरियाणवी माटी में जन्मी और पली बढी एक ऐसी लोकनाट्य परम्परा है जो हरियाणा की लोकसंस्कृति की पहचान है। यह मनोरंजक एंव सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ – साथ यहां के निवासियों के संघर्ष की कहानी भी कहता है 'सांग' खुले आसमान के नीचे, चौतरफा दर्शको से घिरा लोकरंजन और लोक रुचि का क्षेत्र है। इसके कलाकार अभिनय कुशल, संजीव विशेषज्ञ तथा दर्शकों के नृत्य संगीत से बाँधे रखने मे पारंगत होते है।

पं. किशनलाल भाट, अलीबख्श, पं. बालकराम, पं. नेकराम, पं. दीपचन्द, पं. लखमीचंद, पं. मांगेराम आदि जैसे हरियाणा के प्रसिद्ध साँगी हुए है जिन्होंने अपने बेहतरीन प्रदर्शन से इस लोकनाट्य को प्रचलित तथा प्रसिद्ध किया। पं. लखमीचन्द को हरियाणा का 'सूर्यकवि' के रुप में स्थापित किया गया है। इन्हें साँग सम्राट की उपाधि से भी अलंकृत किया गया है। पं. लखमीचंद ने पूरणमल, नौटंकी, पदमावत, हीर राँझा, हरिशचन्द्र, शाही लकड़हारा, मीराबाई आदि साँगों में अभिनय किया।

शोध पत्रः–

साँग हरियाणवी माटी में जन्मी और पली बढ़ी एक ऐसी लोकनाट्य परम्परा है जो हरियाणा की लोग संस्कृति की पहचान है । साँग या स्वांग हरियाणा का कौमी नाट्य है दूसरे का रुप धारण करने के लिए

जो वेश धारण किया जाता है उसे स्वांग कहा जाता है। स्वांग शब्द को ही लोक भाषा में साँग कहा गया है, जिसमे किसी विशिष्ट कथा में निहित पात्रो को उसी रुप में दर्शाने की चेष्ठा करते हुए अभिनय, वाद संवाद एवं गीत वाद्य और नृत्य का आश्रय लेकर नृत्य नाटिका के रुप में सम्पन्न किया जाता है। यह मनोरंजक एवं सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ–2 यहाँ के निवासियों के संघर्ष की कहानी भी कहता है। साँग खुले आसमान के नीचे चौरतफा दर्शकों से घिरा लोकरंजन और लोक रूचि का क्षेत्र है। इसके कलाकार अविजय कुशल, संगीत विशेषज्ञ तथा दर्शकों को नृत्य संगीत से बाँधे रखने में पारंगत होते है।

हरियाणवी साँग परम्परा में ऐसी विभूतियां हुई जिन्होने अपनी साधना के बल पर साँग परम्परा का संबोधन किया । अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए ऐसी रचनाएं रची कि साँग परम्परा हरियाणा तथा आसपास के क्षेत्रों में अलौकिक होकर अपनी आभा बिखेरने लगी । ऐसे ही एक एक दैवीय कलाकार हुए पं. लख्मीचन्द । पं. लख्मीचन्द मानव सुलभ गुण–अवगुण से प्रभावित होते हुए भी महान एवं अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी थे।

कला और कलाकार की सार्थकता इसमें है कि वे मात्र मंनोरंजन के साधन ने होकर जनकल्याण का माध्यम बनें। कला व्यक्तित्व से सामाजिक होकर विस्तृत तो होती ही है साथ ही समाज में उसका स्थान उत्कृष्ट होता जाता है । व्यक्ति और समाज को अपन बहाव में बहाकर उनके ध्यान को अनैतिकता और असमाजिकता से हटाकर उन्हें नैतिकता और सामाजिकता की ओर अग्रसर करे। कलाएँ इन सामाजिक कार्यो को सदियों से पूर्ण करती आई है और वर्तमान में भी कर रही है। इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कलाओं के इस पावन और सार्थक कार्य में कहीं वातावरण तो कहीं समाज से व्याप्त कुरीतियों ने कथा उत्पन्न की। लेकिन यह बात भी सूर्य के समान सत्य है कि बाधाओं के समय समाज के विभिन्न विद्वान कलाकारों ने अपनी दक्षता, कार्य शैली और स्वयं के प्रभाव व्यक्तित्व के साथ अपनी कला को जोड़कर समाज को एक नई दिशा प्रदान की। इन विद्वान कलाकारों में लोक कलाकारों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही। ऐसे ही एक समर्पित कलाकार थे हरियाणा के जनमानस के प्रिय लोक कलाकार 'प्रसिद्ध साँगी पण्डित लखमीचन्द'। जिन्होने अपनी रचनाओं के माध्यम से हरियाणा ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज को नैतिकता की स्वर्ण किरणों से प्रकाशमान करके जनमानस के चिन्तन को एक नई

दिशा प्रदान की। पं. लखमीचन्द का जन्म सोनीपत जिले के गांव जाट्टी कलां में गुजर बसर करने वाले बहुत ही साधारण परिवार में हुआ। मिटटी के घर और थोड़ी सी जमीन ही इस परिवार के आय का साधन थी। बचपन में बालक लखमीचन्द पशुओं को चराने जंगल जाते और सारा दिन सुने सुनाए लोकगीतों को गुनगुनाते रहते। इसी आयु में उन्होंने अनेक भजन मंडलियों और साँगियों की कला का रसास्वादन किया जिसका इनके जीवन और चरित्र पर विशेष प्रभाव पड़ा। उनके स्वयं के गांव या आसपास के गांवों में जो भी कलाकार आता लखमीचन्द तमाम बाधाओं और मुश्किलों के होते हुए भी उनकों सुनने अवश्य जाते। इसी वजह से कई बार उनको बुजुर्गो का कोपभाजन भी बनना पड़ा लेकिन मस्त, फक्कड़ स्वभाव और चिन्तनशील व्यक्तित्व वाले इस बालक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लखमीचन्द व्यक्ति वि ोश से अपनी भावनाओ, चिन्तन को संचित न करके सारे वातावरण में निहित पाते थे। वे तो गाय– भैसों, पेड़–पौधो, घर–परिवार वाले, अडोसी–पडौसी, गांव और समाज सब को बराबर का दर्जा देते थे। इसी कारण इस रचनाकार की रचनाओं में नैतिक मूल्यों, सामाजिक चेतना और ज्ञान को एक अथाह सागर मिलता है जो स्वरों का आश्रय पाकर जन–जन के हृदय पर प्रभाव डालती है। पं. लख्मीचंद द्वारा अभिनित किए जाने वाले कुछ प्रसिद्ध साँग है – पूरणमल, नौटंकी, पद्मावत, हीर–रांझा, चन्द्र किरण, शकुन्तला, जानीचोर, राजाभोज, रघबीर जमाल, गोपीचन्द भरथरी, हरिशचन्द्र, द्रौपदी चीरहरण, कीचकविराट परब, सत्यवान सावित्री, नलदमयन्ती, सेठ ताराचन्द, चापसिंह, शाही लकड्हारा, पुरंजन पुरंजनी और मीराबाई आदि।

पण्डित लखमीचंद साँग में प्रमुख भूमिकाएँ स्वयं निभाते थे। हरिशचंद्र साँग में उनका अभिनय इतना अचूक होता था कि हजारों द ाक साँग देखने के बाद आँसू लिए घर लौटते थे। यही तो लोक कविता एवं लोक नाट्य की सबसे बड़ी खूबी है कि दर्शक पात्रों के साथ ही जीते है। साँग में मंच की सज्जा साधारण होती है। साँग में हिन्दी के नाटको की तरह देश काल व वातावरण का सृजन करने के उद्देश्य से वेशभूशा, आभूशण इत्यादि के सम्बन्ध में कोई लिखित निर्देश नहीं मिलते, फिर भी हम देखते है लखमीचंद अपनी सहज बुद्धि एवं अनभुव के आधार पर वेशभूषा तथा अभिनय के माध्यम से वाछिंत देशकाल व वातावरण तैयार कर लेते थे।

साँग में गेयता एवं संगीतात्मकता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है यही कारण है कि पं. लखमीचंद ने संगीत के सभी तत्वों को समावे ा अपनी रचनाओं में किया है। लोकवाद्यों के वादन से अति निपुण थे। वाद्य यन्त्रों के प्रभाव व महत्ता के विषय मे उन्होंने अपनी विभिन्न कृतियों में लिखा भी है जैसे

ठुमरी गजल कव्वाली सारी बीन मै गाइये तूं।।

संगीत की इन विद्याओं का भी इन्हें भली भॉति ज्ञान था। वे संगीत को कठिन साधना मानते थे। उनका मानना था संगीत के प्रति लापरवाही नहीं होनी चाहिए। ऐसे कलाकारों पर वे क्रोधित होते थे जो सुधरे संगीतज्ञान के साथ मंच पर प्रदर्शन करते थे। उन्होंने स्वयं कहा –

कहै लखमीचंद साँग की राही के सब नै पाया करे सै।
अपना मन बहलावण नै दुनिया मुँह बाया करै सै।
या के सबनै आया करै सै गावण की लैदारी।।

तथा

ताल कंठ सुर ज्ञान चारो सही ठिकाणे साज होगा।
कहै लखमीचंद जब बैरा पाटै छंद सभा बीच जा गाया।।

पं. लखमीचंद को महान लोक कवि, लोक संगीतकार माना जाता है। हालांकि इनकी औपचारिक शिक्षा नाममात्र ही हुई लेकिन संगीतकला, अभिनयकला, काव्यरचना तथा नाट्य आदि कलाओं में प्रवीणता उन्होंने जीवन के बारे में गूढ़चिन्तन, अथक मेहनत और अपने गुरु के प्रति अटूट आस्था एवं श्रद्धा के कारण ही प्राप्त की। उनके गुरु के प्रति समर्पण की भावना का परिचय इसी बात से मितलात है कि उनके प्रत्येक सॉग का आरम्म 'गुरुवन्दना' से होता है और साँग के बीच में भी प्रसंगवश अथवा श्रद्धावश गुरु का आभार प्रकट करना लखमीचंद की विशेषता रही है। पण्डित जी का प्रत्येक साँग इन शब्दों से आरम्भ होती है–

मनै सुमर लिए जगदीश
मानसिंह सतगुरु मिले
जिन तै पा लिया ज्ञान।

वे सद्गुरु को ज्ञान का सागर मानते है। 'चापसिंह' साँग की इन पक्तियों की बानगी देखिए–

लखमीचंद करै सेवा शुरु

ज्ञान तै होग्ये पार धुरु।

म्हारै गुरु जी का रंग ढंग गंग का असनान ध्यान

ज्ञान का झकौला सै।

गुरु जीवन–ज्ञान और कला ज्ञान के श्रोत तो है ही, समय–समय पर उनका चिन्तन साहस और स्वाभिमान के श्रोत के रुप में कार्य करता है। इन्हीं भावों को पण्डित जी ने 'मीरा बाई' के साँग में बड़े ही धार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है–

सीख लै गुरु मान सिंह की वाणी

रहै ना बल विद्या की हाणी

न्यूँ बतलावे ये राजा राणी

जिनकै सच्चे गुरु का ज्ञान सै, हो दिल के दूर अंधेरे कटेगें जनम जनम के रोग।

अर्थात् 'गुरु' मानसिंह की वाणी सीखने से बल विद्या की कमी का आभास नहीं होता। जिनके हृदय में सच्चे गुरु का ज्ञान रहता है उनके जनम जनम के दुःख दूर हो जाते है।

पं. लखमीचन्द ने सामाजिक जीवन और नैतिकता आदि विषयों को साँग के माध्यम से सम्पूर्ण जनमानस के हृदयरन्ध्रों तक पहुंचाया। उनके गम्भीर चिन्तन के कारण उनको अनूठा रचियता माना जाता है। हरि चन्द्र, सत्यवान सावित्री, द्रोपदी चीर, शाही लकडहारा, मीराबाई, कीकच–किवराट, परब सेठ ताराचन्द, भूप पुरंजन तथा पूरणमल इत्यादि साँगों में सामाजिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का उठाकर समाज को नई दिशा प्रदान की। जीवन का कोई भी पक्ष पण्डित जी की रचनाओं से अछूता नही रहा। 'राजा हरिशचन्द्र' साँग पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि वचनबद्धता, दानपुण्य, कर्तव्यपरायणता, पति–पत्नि प्रेम और वात्सल्य भाव भारतीय जीवन का अटूट हिस्सा रहे है। पण्डित जी ने इन जीवन मूल्यों को कभी ना विस्मृत करने पर बल दिया। श्रोता– दर्शक लखीमचंद के पात्रो की भांति निराश होते, प्रसन्न होते, हंसते रोते। सत्यनिष्ठा के प्रतीक 'राजा हरिशचन्द्र' को कर्तव्य की अपेक्षा भावनाएँ मूल्यहीन सी जान पडती है। रचना में निहित भावों को अनुभव कीजिए–

घाट के मालक खुद बण री सै, अपणा जबर वसील्ला करकै।

बईमान भलोवण लाग्गी, मिट्ठा बोल रसील्ला करकै।।

किसनै मारी तरले माट पै, चढ़के चरणा करम बात पै।

ल्हास ने उठा लाई घाट पै, गोरे गात नै लिल्ला करकै।

कित विशयर न डंक चभो दिया

मेरा रेत्ते मै लाल लको दिया,

होणी नै सब तरां खो दिया, इज्जतदार नुक्कीला करकै।।

कित घुँघट मैं दुबकण लाग्यी,

चोट जिगर मै सुबकण लाग्यी,

समसाणां मै सुबकण लाग्गी, तरलै होठ नै ढील्ला करकै।

अर्थात् हरि चन्द्र रानी से कहते है कि स्वयं अपने बेटे को अपने हाथों से मारकर बिना कारण ही मुझसे झगड़ा आरम्भ कर दिया। भाग्य ने राजा को हर प्रकार से लूट लिया। जीवन ऐसे बिखर गया मानो नीचे रखा घड़ा टूटने पर ऊपर रखे घड़ों का पानी बिखर जाता है। पण्डित जी ने जीवन में आने वाले दुःखों की उपमा घड़ों से बहते पानी से की है। इसके बावजूद भी आदमी को अपना धर्म नही छोड़ना चाहिए। साँग की रचनाओं में इस बात को बड़े हीा मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया। रानी मरघट के महसूल (कर) के रुप में अपना आंचल तक राजा को सौप देती है और राजा इसको अपने मालिक 'कालिया भंगी' को सौप देते है।

ले थामह् हाथ मै काले, अपणे मरघट का महसूल मुझ बंदे का माड़ा भाग था

इस देही के लागणा दाग था

एक हाथ्या का लाया बाग था

काट दिए विधना नै डालै

मेरा गया सूख हजारा फूल।

पण्डित जी द्वारा रचित साँग 'सत्यवान सावित्री' भी सामाजिक जीवन के कर्तव्यों, सिद्धान्तों और मूल्यों से ओत–प्रोत है। सावित्री के पिता जब उसके लिए उपयुक्त वर ढूंढते थक जाते है तो कहते है कि पुत्री तुम स्वयं ही अपने लिये उपयुक्त वर का चुनाव करो। यहाँ यह पद इस बात का संकेत देता है कि समाज में लड़की को पर्दे की वस्तु ना समझ कर अपने

निर्णय स्वयं लेने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए। सभी सदस्यों को परिवार के दुःखों को बांटना चाहिए।

सन्तान को तभी सुख से सोना चाहिए जब माता–पिता चैन की नींद सोते हो। सत्यवान को वर के रुप में चुनने के पश्चात् उसकी उम्र के कम होने की बात ज्ञात होने पर भी अपने निश्चय पर अडिग सावित्री कहती है। संसार ही न वर है। सावित्री के दृढ़ निश्चय के सामने सब झुक जाते है।

कुछ पहचाण नां करी जा भाई
साद्दी कर द्यो कुछ ना डर सै,
इसके मन का चाहया वर सै
ओर की इसकी बृद्धि थिर सै
रोक्या ताग्या ना करी जा भाई।

अन्त मेंज जब धर्मराज सत्यवान के मृत भारीर से आत्मा निकाल कर चल देते है तो अटूट आत्मबल, धैर्य, पवित्रता और पति के पुनर्जीवन में अचल विश्वास रखने वाली सावित्री धर्मराज से कहती है–

धर्मराज से सावित्री फरमाई।
थारे बिना परभू कौण करै सहाई।
आत्मा अपणी पै ज्ञान को छिड़का लगाओ खास
प्रीती सै विश्वास होता, धरम नै निभाओ पास
सतपुरुषों की आत्मा पै, धरम नै निभाओ पास

भारतीय संस्कृति में पति वरण एक ही बार किया जाता है। प्रियतम को ईश्वर के समान मान सारी उम्र उसकी आसक्ति में बीत जाती थी। पति प्रेम केवल इस संसार में आनन्ददायक नहीं अपितु मोक्ष और सुखी परलोक का भी माध्यम है। स्वयंवर के समय 'दमयन्ती' के इन्ही विचारों को पं. लखमीचंद ने कितने सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है–

दमयन्ती नै सरधा करकै, देवतओं को परणाम किया।
हँस के बोल्ली राजा नल तै, तुम्हीं हमारे बर्णो पिया।
हँस के कहे हुए वचनों से जै इब जाओगे टलकै।
या जहर मंगा के खाल्यूंगी या अगनी बीच मरुँ जलकै।

इब तो बरो मनै मेरे साजन, धोऊँ पैर तेरे मल मल कै।
नही तो एकान्त में फांस्सी लैके, खुद आप मरु गल मै घल कै।
किसी ने किसी तरां आप मार्रूा कै, खोलयूं अपणां आप पिया।

एवं

जो मेरे मन का सत संकल्प
उससे नहीं हिलूंगी
जै पतिवरता धरम छोड़ दयूं
तै फूल्लूं नही फलूंगी
हंस के कहे हुए वचनों तै
हरगिज नहीं टलूंगी काट्य दियों संसार के बंधन
मोक्ष में गैल चलूंगी।

पं. लखमीचंद द्वारा रचित प्रत्येक साँग ने समाज में उपस्थित किसी न किसी समस्या को लोगों के समक्ष उजागर किया है। और अपनी प्रभावशाली गायकी के माध्यम से लोगों को आगाह करते हुए बुराइयों को त्यागने के साथ–साथ अच्छाईयों को अपनाने का सशक्त प्रयास किया है। नैतिकता पण्डित जी के साँगों का प्रिय विषय रहा है। प्रत्येक साँग में प्रसंगवश समाज को उसका पाठ पढ़ानें से नहीं चूकते। यह विषय जितना गूढ़ है उतना ही विस्तृत भी, लेकिन पण्डित जी इसको सरल बनाकर लोगों के ह्रदयों में इस प्रकार उतारते थे कि सुनने वालों को स्वयं भी नहीं ज्ञात होता कि उनके जीवन मे कब इन मूल्यों को प्रवेश हो गया। यह उसी प्रकार से जैसे रोग दूर करने के लिए कड़वी दवाई को मीठा आवरण चढ़ाकर रोगी को दिया जाता है। इसी धारण को धुरी बनाकर पण्डित जी ने साँगों की रचना की और अपने उद्देश्य में सफल भी रहे। इस प्रकार यह बात बिल्कुल गंगाजल की तरह पवित्र और सत्य है कि पण्डित जी सामाजिक एवं नैतिक मुल्यों के प्रबल समर्थक और प्रचारक थे जिन्होंने संगीत को माध्यम बनाकर समाज को उज्जवल, पवित्र और प्रकाशमान दिशा प्रदान की। पं. लखमीचन्द ने अपने जीवनकाल मे बहुत सारे विषयों पर साँग की रचना की जिनमें से कुछ इस प्रकार है– शाही लकड़हारा, सेठ ताराचन्द, शकुन्तला, सत्यवान सावित्री, नौटंकी, अनिरुद्ध, पद्मावत, सरणदे, रुपबसन्त, भरथरी पिंगला, सरवर नीर, छोरे बागडी़, ध्रुव भगत, धर्मकौर, चन्द्रहास, पूरणमल, हीर–रांझा, धर्मपाल भाांता कुमारी, मीराबाई,

बीजा–सोरठ, जैमलफत्ता, जयानी चोर, अंजनादेवी, राजा हरि ाचन्द्र, हूर मेनका, चन्द्रकिरण, चीरहरण, जमाल, उरवर–अनिरुद्ध, परंजन पंरंजनी आदि।

पं. लखमीचंद ने साँग कला को अध्यात्म का आवरण ओढ़ाकर समाज के बीच में इस कला का स्तर बहुत उंचा उठा दिया वे एक महान कवि, गायक, नृतक, एवं साँगी थे। उनको लोक मनोविज्ञान की गहरी परख थी। उनका व्यवहारिक, सांस्कृतिक और सामाजिक ज्ञान कमाल का था। सांस्कृतिक मूल्यों एंव आदर्शो के मर्यादा को ध्यान में रखकर सामाजिक रिश्तों का वर्णन उनकी विशेषता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पं. लखमीचंद को साँग सम्राट भी कहा गया। साँग परम्परा को नई उंचाइयां देने वाले पं. लखमीचंद का स्वर्गवास महज 41 वर्ष की अल्पायु में सम्वत् 2003 में यानि 1945 को हो गया। हरियाणा लोक संगीत से जुड़ने वाला हर छोटा– बड़ा कलाकार, साहित्यकार, वाद्य वादक उनको कभी नहीं भूल पाएंगे।

सन्दर्भ सूचीः–

1. हरियाणा तथा पंजाब की संगीत परम्पराः डा. रीता धनकर, संजय प्रकाशन पृ. 101
2. पं. लखमीचंद ग्रंथाववली : डा. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला
3. सांग सम्राट पं. लखमीचंदः डा. राजेन्द्र स्वरुप वत्स, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
4. हरियाणा के सूर्य कवि लखमीचंदः श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा, हरियाणा पब्लिकेशन ब्यूरो, चण्डीगढ़